२. विरेचन-सिद्धान्त ( Theory or Catharsis ) : विरेचन-सिद्धान्त का उल्लेख अरस्तू ने अपने ग्रन्थ 'पोइटिक' में 'त्रासदी' के विवेचन के प्रसंग में किया है। उन्होंने इस पर विस्तार से नहीं कहा—केवल त्रासदी के महत्त्व और प्रभाव को व्याख्यायित करते हुए उल्लेख किया है।[१] इसमें इस बात पर जोर दिया है कि गम्भीर कार्यों की सफल और प्रभावशाली अनुकृति वर्णन के रूप में न होकर कार्यों के रूप में होती है जिसमें करुणा और भय को उत्पन्न करनेवाली घटनाएँ होती हैं, जो इन भावों के रेचन द्वारा एक राहत और आनन्द प्रदान करती हैं। यह रेचन की प्रक्रिया, चिकित्सा-प्रणाली के रेचन से ली गयी है, जिसमें पेट के विकारों से उत्पन्न कष्ट को दूर करने के लिए रोचक ओषधियों के द्वारा विकार को निकालकर कष्ट को दूर कर

---

१. "A tragedy, then, is the imitation of action that is serious and having magnitude, complete in itself; in language with pleasurable accesories, each kind brought in separat:ly in the parts of the work, in a dramatic, not in a narrative form, with incidents arousing pity and fear, where with to accomplish its catharsis of such emotions,"—Aristotle On Art of Poetry, p. 35.

Scanned with CamScanner

शरीर को सुख पहुँचाया जाता है। अरस्तू का विचार है कि इसी प्रकार भय और करुणा के दो भाव हमारे भीतर घनीभूत होते रहते हैं, वे इस प्रकार की त्रासदी के कार्यों का देखने पर कुशल अभिनय द्वारा सन्तुलित और समंजित हो जाते हैं और इस प्रकार हमारे मन को राहत और आनन्द की अनुभूति होती है। अपने इस कथन के द्वारा अरस्तू ने कई शंकाओं का समाधान किया है तथा काव्य और कला के रचयिता पर जो प्लेटो को आक्षेप है कि वे अपनी रचनाओं के द्वारा हमारी वासनाओं को उभारते हैं, जिससे हमारा विवेक और तर्क-बुद्धि कुंठित हो जाती है और हम भले-बुरे का ज्ञान खो बैठते हैं, इसका भी उत्तर दिया है।

काव्य जैसा है, उस रूप में प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य के लिए हानिकर बताया। उनका कहना है कि कविता में जो गहरा प्रभाव डालने की शक्ति होती है, उससे वह अन्य लोगों के साथ-साथ भले लोगों को भी हानि पहुँचाती है, जो अत्यन्त भयंकर है।[1] कविता हमारी लोभ, काम, मोह, क्रोध आदि वासनाओं तथा पीड़ा और आनन्द की भावनाओं को जगाती है। वह उनका सिंचन और पोषण करती है। इन वासनाओं के दमन करने या हटाने के स्थान पर, उनका प्रभाव बढ़ाती और उनका शासन स्थापित करती है। जबकि मनुष्य-जाति के सुखों और गुणों की वृद्धि के लिए आवश्यक है कि उन्हें वश में रखा जाय। अतः मधुर कविता देवी को, महाकाव्य या प्रगीत के रूप में, आदर्श राज्य में, कानून और तर्क-बुद्धि के स्थान पर प्रवेश दिया गया, जो मनुष्य की व्यवस्था के लिए सदा हितकर माने गये हैं, तो सुख और दुःख की वासनायें ही उस पर शासक होंगी।[2]

कविता के सम्बन्ध में प्लेटो ने जो ये आक्षेप लगाये, वे शुद्ध नैतिक और प्रशासकीय

---

१. The power which poetry has of harming even the good (and there are very few who are not harmed), is surely an awful thing.—The Dialogues of Plato, Vol II, p. 481.

२. In all of them poetry has a like effect; it feeds and waters the passions, instead of drying them up; she lets them rule, though they ought to be controlled if mankind are ever to increase in happiness and virtue. If you go beyond this and allow this honeyed muse to enter either in Epic or Lyric verse not law and reason of mankind, which by common consent, have ever been deemed best, but pleasure and pain will be rulers in our state.—Dialogues of Plato, p. 482-83.



दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं और निश्चयतः सभी काव्य-कला-प्रेमियों के मन को उद्विग्न करते हैं। अरस्तू के मन को भी इन आक्षेपों ने झकझोरा होगा और इनका उत्तर भी प्लेटो को अरस्तू ने अपने सम्वादों में दिया होगा। परन्तु उसका एक सूत्र मात्र हमें उनकी 'पोइटिका' में मिलता है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। अपने इस विरेचन-सूत्र से अरस्तू ने यह स्पष्ट कर दिया कि कविता और विशेष रूप से त्रासदी हमारी भय और करुणा की भावनाओं को या अन्य वासनाओं को, उभारती और उत्तेजित नहीं करती, वरन् इस प्रकार की जो वासनायें हमारे भीतर भरी हुई हैं और मौके, बेमौके उभरकर हमारे सामाजिक जीवन और व्यवस्था में समस्यायें पैदा करके कष्ट देती हैं, उनका, उनके विकार का रेचन हो जाता है। हमें राहत मिलती है और वे उदात्त रूप में रहकर, हमें आनन्द प्रदान करती हैं। कविता हमारी वासनाओं को जगाती और उत्तेजित करती है, पर उनके परिष्कृत रूप में। कविता या नाटक के पात्रों के बीच इन उत्तेजित वासनाओं और उसके दुष्परिणामों का हमारे शरीर और जीवन से सीधा सम्बन्ध न होने से, ये वासनायें परिष्कृत सम्वेदनाओं का रूप ग्रहण करती हैं। यही भावों का विरेचन है। कविता का यही वास्तविक प्रभाव और कार्य होता है। अतएव इस दृष्टि से देखने पर प्लेटो के आक्षेप समाप्त हो जाते हैं। अरस्तू का यह दृष्टिकोण वास्तव में सौन्दर्यवादी है।

इस विरेचन-सिद्धान्त सूत्र से एक और प्रश्न का उत्तर मिल जाता है, जो प्रायः त्रासदी और विषादान्त महाकाव्यों के प्रसङ्ग में उठता है। वह यह है कि मनुष्य सुख और आनन्द देनेवाले कार्यों और दृश्यों को देखना चाहता है। जीवन के दुःख—विषादपूर्ण, करुण दृश्यों को नहीं, उनसे वह दूर रहना चाहता है, तब वह त्रासदी जैसे भयपूर्ण और करुण नाटकों को क्यों देखना चाहता है? उसका उत्तर यही है कि महाकाव्य पढ़ने से या त्रासदी देखने से, पात्रों को जिन भयङ्कर घटनाओं और परिस्थितियों के बीच गुजरना पड़ता है और जो दुःख या करुणा उनके कथनों और क्रियाओं से प्रकट होती है, उसका हमारे शरीर और अपने जीवन पर कोई दुष्प्रभाव नहीं होता। तटस्थ भाव से देखने और कलाकारों के सुन्दर प्रभावशाली कथनों, क्रियाओं और अभिव्यक्तियों से हमारी वासनायें उद्दीप्त होकर निकल जाती हैं और हमें इन दुःखपूर्ण कृतियों में भी राहत और आनन्द प्राप्त होता है। इसीसे हम इन्हें देखते हैं। इस विषय पर भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने रस-सिद्धान्त का विवेचन करते समय विचार किया है।

अरस्तू के विरेचन-सिद्धान्त के द्वारा प्लेटो के इस मत का भी निराकरण हो जाता है कि त्रासदी आदि के भय और करुणा के भावों से लोगों में भय और कायरता की प्रवृत्तियाँ जाग्रत होती हैं। अरस्तू के मत की व्याख्या करते हुए यह कहा गया

है कि मानव-मन में जो कटु वासनायें रहती हैं, वे यथार्थ जीवन में प्रकट होने पर सामाजिक हानि कर सकती हैं; पर कविता और नाटक के माध्यम से प्रकट होकर वे ही वासनायें, भावों का रूप धारण कर दर्शक को उनसे निष्कृति प्रदान करती हैं तथा उसे उदात्त और संवेदनशील बनाती हैं। अरस्तू के इस विरेचन या 'कैथार्सिस' के सिद्धान्त की अन्य लोगों ने भी व्याख्या की है। कुछ लोग यह मानते हैं कि त्रासदी का आनन्द, राहत या निष्कृति का आनन्द है। वह आर्ट आफ् रिलीफ से प्राप्त है। जबकि अन्य सुखमय भावों के प्रदर्शन की कला, आनन्द की कला है। वह आर्ट आफ् डिलाइट है—यह स्वीकार करते हैं।

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मूर्धन्य कवि मिल्टन ने अपने नाटक 'सैम्सन एगोनिस्टिस' में कैथार्सिस की व्याख्या करते हुए लिखा है[1] कि अरस्तू ने भय, करुणा या आतंक के भावों को काव्य में पढ़ने और नाटक में देखने से हमारे मन के भीतर के इन भावों का शमन और विरेचन होता है, अगर काव्य या नाटक में इनका सही अनुकरण होता है, यह सत्य है। प्रकृति में भी इसके प्रमाण मिलते हैं जहाँ समान चीजों का बचाव उसी प्रकार की चीजों से किया जाता है। कहा भी गया है कि विष का शमन विष से ही होता है।

अरस्तू ने संगीत के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक पालिटिक्स ( Politics ) में कहा है कि संगीत का प्रभाव उन सब भावुक तथा भय-करुणा से प्रभावित व्यक्तियों पर होता है, जो इन वासनाओं से तुरन्त प्रभावित हो जाते हैं। संगीत उन भावनाओं को उफनाकर निकाल देता है। उसके बाद वे व्यक्ति आनन्द प्रद राहत का अनुभव करते हैं। कैथार्सिस या विरेचन का उद्देश्य यही आनन्दप्रद राहत ( Delightful Relief ) है। विरेचन का प्रयोग अरस्तू ने दो प्रसंगों में किया है—प्रथम त्रासदी के विवेचन के प्रसंग में जिसमें उन्होंने कहा है कि त्रासदी, भय और करुणा के भावों का विरेचन या कैथार्सिस, तभी पूरी करती है, जबकि

१. "Therefore said by Aristotle to be of power by raising pity and fear, or terror, to purge the mind of these and such like passions, that is to temper and reduce them to just measure with a kind of delight, stirred up by reading or seeing those passions well imitated. Nor is nature wanting in her own efforts to make good his assertion; for so in physical things of melancholic hue and quality are used against melancholy, sour against sour, salt to remove salt." Milton in Samson Agonistes.



( क ) उसमें उदात्त, परिपूर्ण गम्भीर कार्यों का अनुकरण हो।

( ख ) उसके विविध भागों में, आनन्दप्रद भाषा का उसके उपकरणों जैसे लय, और संगीत के साथ यथावश्यक यथास्थान प्रयोग किया गया हो।

( ग ) यह अनुकरण वर्णनात्मक न होकर अभिनय या कार्य के रूप में हो।

( घ ) तथा उसमें भय और करुणा को उत्तेजित करनेवाली ऐसी घटनाओं का समावेश हो जिनसे इन भावों का विरेचन सम्पन्न हो सके।[1]

इसी प्रकार विरेचन का दूसरा उल्लेख अपने ग्रन्थ 'पालिटिक्स' में किया है जिसमें कहा है कि धार्मिक उन्माद के नृत्य और संगीत द्वारा भी भावों का विरेचन ( या कैथार्सिस ) होता है। ग्रीस की डायोनाइसस ( Dionysus ) पूजा में श्रद्धालु भक्त, उस समय के उत्तेजक संगीत से इतने मस्त हो जाते थे, कि उनके भीतर भी भाव-विरेचन या कैथार्सिस की क्रिया सम्पन्न होती थी। इस प्रकार मनोविकारों के विरेचन द्वारा उनसे निष्कृति प्राप्त कर आनन्द का अनुभव कराना ही, ऐसे संगीत तथा त्रासदी का लक्ष्य था।

अरस्तू ने त्रासदी और संगीत के संदर्भ में ही विरेचन का उल्लेख किया है; परन्तु भावों का विरेचन अर्थात् उत्तेजन, निष्कृति ( राहत ) और आनन्द, नाटक के देखने और काव्य के श्रवण से बराबर होता है। अतः अरस्तू का विरेचन-सिद्धान्त पूर्व में उठे प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करता है।

संगीत के प्रभाव का वर्णन करते हुए भी अरस्तू ने कहा है कि संगीत का अध्ययन एक नहीं, वरन् अनेक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाना चाहिए—जैसे ( १ ) शिक्षा के लिए, ( २ ) विरेचन ( भाव-शुद्धि ) के लिए और ( ३ ) मानसिक आनन्द के लिए। भय और त्रास से आविष्ट प्रत्येक व्यक्ति, भाव-शुद्धि को अनुभव करता है। इससे उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। इस प्रकार ऐसे रोग जो विरेचन को सम्पन्न करते हैं, मानव-समाज को निर्दोष और निर्विकार आनन्द प्रदान करते हैं।

**धार्मिक व्याख्या :** विरेचन-सिद्धान्त पर आगे चलकर बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। गिल्बर्ट मरे ( Gilbert Murray ) ने धार्मिक पृष्ठभूमि में अरस्तू की कैथार्सिस की व्याख्या करते हुए लिखा है कि डायोनाइसस उत्सव, स्वतः ही विरेचन, कैथार्सिस अथवा पूरे समुदाय को, पिछले वर्ष के विष

१. Aristotle on the Art of Poetry by I. Bywater, p. 35.

और विकारों से शुद्धीकरण का रूप है।[१] यह उत्सव अरस्तू के समय प्रचलित था। ऐसे ही उत्सव पहले से मिस्र में प्रचलित थे जिनमें देवताओं को क्षतविक्षत करके फिर उन्हें जीवित होते दिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त अरस्तू के समय में ही, ई० पू० ३६१ में, यूनानी त्रासदियों का प्रचलन रोम में हो गया था; परन्तु यह प्रचलन कलापरक न होकर धार्मिक विश्वास के आधार पर हुआ था। इसके होने से महामारी नहीं आती। अतः ऐसा लगता है कि इस धार्मिक परिप्रेक्ष्य से अरस्तू ने विरेचन का भाव ग्रहण कर, अपने काव्यशास्त्रीय विवेचन में उसे एक नया रूप प्रदान किया।

**नीतिपरक व्याख्या :** आगे चलकर विरेचन-सिद्धान्त की नीति से सम्बद्ध या आधार से सम्बद्ध व्याख्या की गयी। १७वीं शताब्दी में यह मत व्यक्त किया गया कि त्रासदी द्वारा उत्पन्न भय और करुणा, उत्तेजित होकर, अन्य भयंकर वासनाओं, जैसे क्रोध, लोभ, अहंकार आदि को शान्त कर देती है, जिसका प्रभाव वैयक्तिक आचार और नैतिकता पर पड़ता है। १९वीं शताब्दी के कई विचारकों ने यह भी स्थापित किया है कि भय और करुणा के भावों के त्रासदी में प्रदर्शन द्वारा दर्शकों के मन में रहनेवाले इन्हीं और अन्य भावों को निजी स्वार्थ की सीमा से उठाकर विरेचन से उदात्त कर दिया जाता है, जिससे व्यक्ति का आचार और उसकी नैतिकता उदात्त हो जाती है। सैम्युअल जानसन की जीवनी लिखनेवाले बास्वेल ने 'लाइफ आफ् जानसन' में लिखा है कि जब मैंने उनसे यह पूछा कि भय, आतंक और करुणा के दृश्यों से हमारी भावनाओं का विरेचन या परिष्कार किस प्रकार होता है, तो उन्होंने बताया कि वासनायें, मनुष्य के कार्यों की महान् प्रेरक होती हैं; पर वे बड़ी मैली और विकारग्रस्त रहती हैं। अतः यह आवश्यक होता जाता है कि उनका विरेचन और परिष्कार भय और करुणा के प्रदर्शन से किया जाय। जैसे मंच पर कोई अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति, जिसने अन्याय से अपने को उच्च पद पर पहुँचाया हो, दण्डित होता दिखाया जाता है, तो हमें उस महत्त्वाकांक्षा के दुष्परिणाम से भय लगने लगता है। इस प्रकार भावों का परिष्कार होता है।

इसी प्रकार एक दूसरे आलोचक रैपिन ( Rapin ) का मत है कि अभिमान, निष्ठुरता, मानव-जाति के दुर्गुण हैं। त्रासदी में जब दो अन्य भावों भय और करुणा को दिखाया जाता है और हम देखते हैं कि पुण्यकर्मी सज्जनों और महान् व्यक्तियों को भी दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ता है, तो हमारी उनके प्रति दया-भावना या करुणा जाग्रत होती है और हमें उनकी सहायता करने को प्रेरित करती है। हमारे हृदय में सभी संकटग्रस्त लोगों के प्रति संवेदनशीलता पैदा होती है, जो अत्यन्त उत्कृष्ट और दिव्य गुण है। इस प्रकार भावों के विरेचन से जो भी दुःखी और पीड़ित हैं, हमारी करुणा के पात्र बन जाते हैं।

**कलापरक व्याख्या :** विरेचन या कैथार्सिस की कलापरक व्याख्या अरस्तू ने की, यद्यपि उन्होंने प्रेरणा, धार्मिक उत्सवों के विरेचन और चिकित्साशास्त्र की रेचन-क्रिया से ग्रहण की। पर उसका नया अर्थ देकर उसे काव्य और कला के क्षेत्र में लागू किया, जिस पर पहले विचार किया जा चुका है। यों कैथार्सिस शब्द का प्रयोग प्लेटो ने भी किया है जो इस भाव से जुड़ा हुआ है कि सभी सुख-दुःखमयी वासनाओं का विरेचन या शुद्धीकरण ही वास्तव में सत्य है।[१] इसीके आधार-सूत्र को लेकर अरस्तू ने स्थापित किया कि काव्य और नाटक में जिन भावों या वासनाओं का वर्णन किया जाता है या मंच पर प्रदर्शन किया जाता है वे मनुष्य के भीतर स्वार्थ और अहंभाव से ग्रस्त हानिकर वासनायें नहीं हैं वरन् वे कलापूर्ण अभिव्यक्ति से विरेचित होकर शुद्ध और उदात्त हो जाती हैं, क्योंकि उनसे संलग्न स्वार्थभाव निष्कृत हो जाता है। और इस प्रकार वे प्लेटो द्वारा 'फेडो' में कथित उपर्युक्त सत्य का रूप बन जाती हैं; अतः वे आनन्दप्रद भी हैं और दर्शकों के मन और संवेदन को उदार और उदात्त भी बनाती हैं।

१. The much debated word 'Katharsis', purification or purgation, may have come into Aristotle's mouth from the same source. It has all the appearance of being old word which is accepted and re-interpreted by Aristotle rather than a word freely chosen by him to denote the exact phenomenon, he wishes to describe. At any rate Dionysus ritual itself was a katharmos or katharsis—a purification of community from the taints and poisons of the past year.........
According to primitive ideas, the mimic representation on the stage of 'incidents arousing pity and fear, did act as katharsis of such passions or sufferings in real life. It is worth remembering that in the year 361. BC. during Aristotles life time, Greek tragedies were introduced in Rome not on artistic, but on superstitious ground, as katharsis against a pestilence.
—Preface, p. 15-16 by Gilbert Murray to Aristotle On the Art of Poetry.

१. Truth is infact a kind of catharsis of all such pleasures and tears, Plato's Phedo—69.



Scanned with CamScanner

अरस्तू की 'पोइटिक्स' के सुप्रसिद्ध भाष्यकार प्रो॰ बूचर ने स्पष्ट किया है कि भय और करुणा दोनों ही दुःखात्मक भाव हैं। जीवन में एक दुःख देता है और दूसरा दुःख से उत्पन्न होता है, परन्तु काव्य और नाटक में प्रदर्शित होने पर, वर्णन और प्रदर्शन की कला के प्रभाव से उनसे दुःख का अंश निकल जाता है; क्योंकि सुनने और देखने से हमारे भीतर का 'अहं' भाव दूर हो जाता है और इसीके साथ दुःखात्मक चुभन भी दूर हो जाती है। यह 'स्व' या आत्मा का विस्तार है। इसी विस्तार और कला के चमत्कार से दुःखात्मक भावों की परिणति सुखानुभूति में हो जाती है। यह कवि या नाटककार का जादू है। सामान्य जन अपने दुःख को अपना समझकर कष्ट का अनुभव करता है, परन्तु कवि या नाटककार किसी व्यक्ति के दुःख को सार्वजनिक बना देता है, जिससे दुःखात्मक भाव दुःखद न रहकर सुखद और आनन्दपूर्ण हो जाता है, क्योंकि उत्तेजित होने पर दुःखात्मक भावों का विरेचन हो जाता है और उनसे निष्कृति मन को सुख देती है। यह व्याख्या भारतीय रसशास्त्रीय चिन्तन की साधारणीकरण-प्रक्रिया का स्मरण दिलाती है, जिसमें न केवल दुःखात्मक भावों के सुखात्मक होने का कारण ही बताया गया है, वरन् व्यक्तिगत अनुभूति किस प्रकार सामूहिक अनुभूति हो जाती है, इसका रहस्य भी उद्घाटित किया गया है।

उपर्युक्त तीनों दृष्टियों से विचार करने के उपरान्त भी एक प्रश्न सामने खड़ा होता है और वह यह है कि विरेचन के लिए अरस्तू ने त्रासदी में घटनाओं के द्वारा अन्य भावों को उत्तेजित होने की बात या सभी भावों या किसी भाव के उत्तेजित होने की सामान्य बात न कहकर, केवल दो भावों—भय और करुणा को उत्तेजित कर भावों के विरेचन की बात क्यों कही है? उन्होंने भय और करुणा को ही क्यों चुना? अन्य भावों जैसे क्रोध, उत्साह, घृणा आदि भावों को उत्तेजित करने की बात क्यों नहीं कही? यह एक विचारणीय प्रश्न है। अरस्तू ने त्रासदी के कथानक और घटना-प्रसंग में यह भी बताया है कि भय और करुणा के भावों के उत्तेजित होने के लिए कैसा घटना-क्रम और चरित्र चाहिए। उनका निष्कर्ष है कि करुणा और भय (१) न तो सज्जन पुरुष को सुखमय परिस्थिति से दुःख और यन्त्रणा की परिस्थिति में दिखाने से जाग्रत होते हैं और (२) न दुष्ट मनुष्य को यन्त्रणा से सुख की परिस्थिति में दिखाने से ही वे जाग्रत होंगे तथा (३) न अत्यन्त अत्याचारी व्यक्ति को सुख की परिस्थितियों में प्रस्तुत करने से भी भय और करुणा के भाव जाग्रत होंगे। वे तो तब जाग्रत होते हैं जब कोई बहुत बड़ा सत्कर्मी नहीं, वरन् सामान्य व्यक्ति, अपने दुर्गुणों और पापों के कारण नहीं; वरन् अनेक प्रख्यात व्यक्तियों को समझने और उनके सम्बन्ध में निर्णय की त्रुटि के कारण, दुर्भाग्य का शिकार होता है। जिन परिस्थितियों और घटनाओं के प्रदर्शन से भय और करुणा पूर्णतः जाग्रत होती है, उनका उल्लेख अरस्तू ने सोदाहरण



किया है। साथ ही साथ यह कहा है कि भय और करुणा को पूर्णतया जाग्रत करनेवाली घटनाओं के द्वारा उसी प्रकार के भावों का विरेचन सम्पन्न होता है। यहाँ पर उसी प्रकार की या वैसी ही वासनाओं या भावों के विरेचन की बात कही गयी है। निश्चय ही त्रासदी में प्रेम, ह्रास आदि की भावनाओं का तो मेल ही नहीं बैठता। विरेचन, भय, करुणा, क्रोध, घृणा आदि के भावों का ही विरेचन होगा, जिनसे हमारे भीतर विकार रहते हैं और जिनसे दुःखमय परिस्थितियाँ बनती हैं। करुणा और भय की भावनाओं को ही क्यों लिया, इस पर विचार करने पर यह बात उठती है कि अन्य कौन भाव हो सकते हैं। क्रोध, अहंकार, घृणा, वीरता आदि के भावों के प्रदर्शन से दर्शकों के मन पर इन्हीं भावों के जाग्रत होने की स्थिति बनती है, पर इससे अन्तःकरण द्रवित होकर विरेचन की स्थिति में नहीं जा सकेगा और न आत्मा का परिष्कार ही होगा। इन भावों का उतना व्यापक, गम्भीर और हृदय को कोमल बनानेवाला प्रभाव भी नहीं पड़ता। अतः त्रासदी की सम्पन्नता नहीं हो पायेगी। विरेचन विशेष रूप से भय और करुणा के भावों के उपयुक्त प्रदर्शन से ही होता है। विरेचन से ही मन द्रवित होता है और उसमें सुकुमार संवेद्यता जाग्रत होती है, क्योंकि विकार, स्वार्थ और अहं से सम्बद्ध मैल घुल जाता है तथा आत्मा स्वस्थ और स्वच्छ हो जाती है। आत्मा के स्वच्छ और स्वस्थ होने पर ही दुःखात्मक परिस्थितियों में भी राहत और आनन्द की प्राप्ति होती है। भय और करुणा को छोड़कर अन्य भावों में गम्भीर, व्यापक प्रभाव डालने, अन्तःकरण के मन्थन और उसे द्रवित करने की वैसी क्षमता नहीं होती। अरस्तू का कैथार्सिस शब्द अपने भीतर द्रवण और रेचन दोनों अर्थों को छिपाये हुए है। दोनों अर्थ मिलकर इसे चिकित्सा-शास्त्र तक ही सीमित नहीं रखते; वरन् उसे काव्य और नाटक विशेष रूप से नाटक के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार कैथार्सिस या विरेचन, साधारणीकरण की प्रक्रिया से मेल खाता हुआ भी, उससे भिन्न और गहरे धरातल पर है। विरेचन की विशिष्टताओं को हम निम्नलिखित प्रकार से रख सकते हैं—

(क) विरेचन और द्रवण, त्रासदी द्वारा ही हो सकता है।

(ख) इसके लिए भय और करुणा के भावों का सम्यक् नियोजन और प्रदर्शन आवश्यक है।

(ग) घटनाओं के तथा नायक के चयन में बड़ी सावधानी अपेक्षित है।

(घ) विरेचन यद्यपि दुःखात्मक परिस्थितियों और घटनाओं के प्रदर्शन से होता है; परन्तु उसकी परिणति सुखात्मक अनुभूति में होती है।

(ङ) इससे कलात्मक आनन्दानुभूति, आत्मपरिष्कार से नैतिक बल तथा धार्मिक संतुष्टि की प्राप्ति होती है।

Scanned with CamScanner

इस कैथार्सिस अथवा द्रवण-विरेचन-सिद्धान्त पर प्रयोगात्मक खोज आवश्यक है।

**औदात्त्य-सिद्धान्त**

औदात्त्य-सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक 'लांजाइनस' माने जाते हैं। कुछ विद्वान् इन्हें ई० पू० तीसरी शती के यूनानी विचारक मानते हैं और कुछ इन्हें ईसा की पहली शताब्दी में रोम का रहनेवाला काव्यशास्त्री मानते हैं। कुछ भी हो, अरस्तू के पश्चात् प्राचीन काल के विचारकों में 'लांजाइनस' का स्थान उत्कृष्ट है। इन्होंने 'औदात्त्य-सिद्धान्त' की प्रतिष्ठा की; क्योंकि इनके समय में साहित्य में गिरावट आ गयी थी। 'लांजाइनस' के ग्रन्थ 'पेरि हुप्सुस' ( Peri Hupsous ) की खोज १६वीं शताब्दी में हो सकी और इसका प्रथम संस्करण १५५४ ई० में प्रकाशित हो सका, जो भी अपूर्ण माना जाता है। इस 'पेरी हुप्सुस' में जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'दि सब्लाइम' ( The Sublime ) किया गया है, औदात्त्य-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की गयी है। यह औदात्त्य-सिद्धान्त काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण है। लांजांइनस ने औदात्त्य-तत्त्व की प्रतिष्ठा करके काव्य को गरिमामय और भव्य बनाने का प्रयास किया है। इसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किन बातों के समावेश से काव्य में औदात्त्य की प्रतिष्ठा की जा सकती है। लांजाइनस की औदात्त्य-सम्बन्धी अवधारणा बड़ी व्यापक है तथा साहित्येतर इतिहास, दर्शन और धर्म जैसे विषयों को भी समाविष्ट कर लेती है। लांजाइनस ने औदात्त्य की प्रेरणा कैसिलियस ( Caecilius ) के निबन्ध 'उदात्त' से ली थी जिसका विवेचन करके इन्होंने विकसित औदात्त्य-सिद्धान्त की स्थापना की। उन्होंने इसके द्वारा मानव-मूल्यों को पतन से बचाने और आत्मा को उदात्त बनाने के लिए यह कार्य किया। लांजाइनस का औदात्त्य तत्त्व, उदात्त शैली नहीं है, वरन् इसमें उदात्त विषयवस्तु, विचार और भाव तथा भाषा एवं अलंकार सभी कुछ शामिल हैं। लांजाइनस के विचार से औदात्त्य वाणी का उत्कर्ष, कान्ति और वैशिष्ट्य है जिसके कारण महान् कवियों, इतिहासकारों, दार्शनिकों को प्रतिष्ठा, सम्मान और ख्याति प्राप्त हुई है क्योंकि इसीसे उनकी कृतियाँ गरिमामय बनी हैं और उनका प्रभाव युग-युगान्तर तक प्रतिष्ठित हो सका है। उनके उदात्त-सिद्धान्त के तत्त्व आगे दिये जाते हैं।

( क ) **विषयगत गरिमा एवं महान् अवधारणाओं की क्षमता :** लांजाइनस का यह निश्चित और स्पष्ट मत है कि किसी काव्य या रचना को महान् होने के लिए यह आवश्यक है कि कवि और रचनाकार के भीतर महान् अवधारणायें एवं उच्च विचार अवस्थित हों। उसकी कल्पना उच्च और व्यापक हो, तभी वह मानव-प्रकृतिगत क्षुद्रताओं से उसे ऊपर उठा सकता है। यदि वह स्वयं क्षुद्र और निम्नकोटि के विचारों से युक्त है, तो वह महान् कृति की रचना नहीं कर सकता। कवि की इस बात का प्रमाण, सबसे पहले उसके विषय से मिलता है। यदि विषय महान् है, तो कृति के महान् होने में वह एक महत्त्वपूर्ण अंग को प्रदान करता है। इस कार्य के लिए कवि को महाकवियों की महान् कृतियों का अनुशीलन करना चाहिए। यदि कवि में प्रतिभा है, तो उनके अनुशीलन से गरिमामय विषय को चुनना सुगम होता है। विषय को गरिमापूर्ण बनाने के लिए उसको विस्तृत एवं गतिमय रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। लांजाइनस का कुछ ऐसा विचार है कि गरिमामय विषय, सामान्य न होकर असाधारण होता है। इसकी प्रेरणा उसे प्रकृति की विराटता और असाधारणता से मिलती है। प्रकृति के विराट् स्वरूप और रहस्य को देखकर हमारे मन में उदात्त भाव और विचार जागृत होते हैं।



( ख ) **उत्तेजित तीव्र आवेग :** लांजाइनस के अनुसार आवेग दो प्रकार के होते हैं—एक निम्न आवेग और दूसरे भव्य आवेग। जब भव्य आवेग मनुष्य के अन्तःकरण में क्रियाशील होते हैं, तब उसकी आत्मा का उत्कर्ष होता है और उदात्तता आती है। निम्नकोटि के आवेगों के प्रबल होने पर उसकी आत्मा मलिन होती है और नीचता जाग्रत होती है। लांजाइनस के मत से उत्साह का आवेग औदात्त्य-तत्त्व को प्रेरित करता है। कवि में उसके उत्पन्न होने से वाणी में ओज और कान्ति उत्पन्न होती है। इसके विपरीत शोक, भय, दया, घृणा आदि से आत्मा संकुचित होती है। इसके साथ ही साथ यह भी सत्य है कि कवि में अगर प्रतिभा तथा कलापूर्ण अभिव्यक्ति की क्षमता है, तो अन्य भावों में भी औदात्त्य का समावेश हो सकता है। प्रकृति में भावों की विविधता इसके लिए भी प्रेरक है।

( ग ) **अलंकार-योजना :** लांजाइनस के मत से औदात्त्य के सम्पादन के लिए तीसरा साधन 'अलंकार-योजना' है। अलंकारों का प्रयोग काव्य-रचना में प्राचीन काल से चला आता है, पर लांजाइनस का विचार है कि अलंकारों का प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं, वरन् भावों के उत्कर्ष के लिए होना चाहिए। भावों के उत्कर्ष के हेतु अलंकार तभी सहायक होते हैं, जब वे कविता में जबरदस्ती न ठूंसे जायँ; वरन् उनका प्रयोग इस प्रकार हो कि कवि जिन भावों को जिस तीव्रता से अनुभव कर रहा है, उन भावों को उसी तीव्रता से अपने काव्य के पाठकों या श्रोताओं के भीतर भी पहुँचा सके। परन्तु पाठकों का ध्यान अलंकार की ओर न जाकर केवल भाव में रम जाये। अनायास पाठकों के हृदयों में भाव जाग्रत और उत्तेजित करने की सहज क्षमता जिस अलंकार-योजना में होती है, वही श्रेष्ठ है। लांजाइनस के विचार से अलंकार स्वतः कवि के मनोभावों में निहित होते हैं और वे उसके कलात्मक बोध के प्रतीक हैं। इसीसे वे मानव-प्रवृत्तियों की सही व्याख्या के साधन बनते हैं। यह तभी सम्भव होता है, जब अलंकारों का प्रयोग स्थान, काल, अभिप्राय, रीति-रिवाज और वातावरण

के अनुरूप हो। अलंकार-योजना के शीर्षक के अन्तर्गत लांजाइनस ने वक्रोक्ति की कुछ बातों को भी ले लिया है, जैसे विलक्षण वाक्य-रचना, काल, लिंग, वचन में बदलाव, व्याजोक्ति, समासोक्ति आदि। परन्तु लांजाइनस ने रूपक, उपमा आदि अलंकारों को शब्दावली ( Diction ) के अन्तर्गत रखा है।

( **घ** ) **भव्य शब्दावली एवं पद-रचना** ( Noble Diction ) : इसके अन्तर्गत लांजाइनस ने शब्दावली, पद, रूपक, उपमा आदि पर विचार किया है। वे विचारों के अनुरूप पद-रचना के पक्षपाती हैं। उनके विचार से विचार और पद अन्योन्याश्रित हैं। न महान् विचार हल्की, क्षुद्र बाजारू शब्दावली में कहे जा सकते और न हल्की सामान्य शब्दावली महान् विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से सम्प्रेषित ही कर सकती है। हल्की शब्दावली वह है जो विषय और सन्दर्भ के अनुकूल न हो। वे शब्दाडंबर के भी पक्ष में नहीं हैं। उदात्त कलाकृति के लिए शुद्ध, उपयुक्त और प्रभावशाली शब्दावली अपेक्षित है। इस शब्दावली में प्रसंगानुसार, रूपक और उपमा का व्यवहार किया जा सकता है। उनके विचार से सुन्दर शब्दावली भव्य विचारों के लिए प्रकाश का काम करती है। भाषा और शब्दावली के प्रसंग में उनकी मान्यता है कि वही शब्दावली और पद-विन्यास रचना के लिए उपयुक्त है, जो उसमें निहित विचारों और भावों को भव्य प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति दे सके।

( **ङ** ) **गरिमामय उदात्त संरचना** ( Dignified and elevated synthesis ) : वास्तव में शब्द, पद, अलंकार आदि तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, परन्तु उनका महत्त्व किसी रचना में गूँथे जाने या पिरोये जाने के ताने-बाने पर निर्भर करता है। सफेद धागे को विविध रंगों में रँगकर, उनको ताने-बाने में पिरोकर जिस प्रकार अनेक डिजाइनों के फूल, बूटेदार वस्त्र बनाये जा सकते हैं, उसी प्रकार शब्दावली और अलंकारों की उपयुक्त संरचना समन्वित एवं उचित प्रयोग के द्वारा एक कलापूर्ण कृति बन जाती है। समन्वय, सामंजस्य और औचित्य ही किसी भी काव्यकृति को गरिमामय बनाते हैं। यह संरचना या सामंजस्य अलग कोई वस्तु नहीं है, वरन् विचारों को समुचित शब्दावली, अलंकारों के उचित एवं प्रभावशाली संगुम्फन का ही नाम है। रचनाकार की कला और प्रतिभा का वैशिष्ट्य भी इसीमें देखा जा सकता है। इस प्रकार लांजाइनस का औदात्य, गरिमामय विषयवस्तु, उदात्त धारणाओं, सहज समुचित अलंकार-योजना, उत्कृष्ट भव्य शब्दावली का समुचित, प्रभावशाली एवं कलापूर्ण संगुम्फन की परिणति ही है।

उपर्युक्त पाँच तत्त्व पाँच साधन हैं जिनसे उदात्त-तत्त्व का सम्पादन होता है। इस उदात्त-तत्त्व की प्रक्रिया काव्य की प्रमुख विशेषता है। लांजाइनस के विचार से

Scanned with CamScanner

काव्य का महत्त्व उसमें निहित शिक्षा, नैतिकता, दर्शन, ज्ञान आदि में तो है ही, परन्तु उसका मूल व्यापार इनसे भिन्न और ऊँचा है। उनके विचार से काव्य में एक ऐसी शक्ति होती है, जो बुद्धि और तर्क से ऊपर है। काव्य में एक ऊर्जा, एक तेज होता है, जो कवि के द्वारा उत्पन्न किया जाता है और पाठक के मन को मुग्ध कर लेता है। पाठक उसमें रमकर स्वयं अपने में उस तेज के संचार का अनुभव करता है। यह कवि के उदात्तीकरण या औदात्त्य-सम्पादन की प्रक्रिया का संकेत करता है जिसे लांजाइनस ने 'एक्सतासिस' ( Ekstasis ) कहा है। यह तर्क द्वारा समझाने की प्रक्रिया से अलग संक्रमण या संप्रेषण की प्रक्रिया है, जिस पर आगे चलकर आइ० ए० रिचर्ड्स ने विस्तार से विचार किया है। यह संप्रेषण की बात लांजाइनस की विशिष्ट और मौलिक सूझ है।

लांजाइनस ने काव्य में औदात्त्य के सम्पादन के जो साधन बताये हैं, उनके साथ ही यह भी बताया है कि इनको लाने के साथ-साथ, औदात्त्य के बाधक दोषों का परिहार भी आवश्यक है। ये दोष हैं, शब्दाडम्बर, बचकानापन या अनुचित वर्णन-विस्तार, भावाडम्बर, नवीनता दिखाने का प्रयत्न आदि। ये दोष तो सभी काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्जित हैं जिन पर लांजाइनस ने विस्तार से प्रकाश डाला है। ये दोष कवि में प्रतिभा न होने पर उसके दिखावे का ढोंग करने से उत्पन्न होते हैं।

लांजाइनस का औदात्त्य-सिद्धान्त, काव्य के समझने के कई मार्गों और अभिगमों ( approaches ) को प्रस्तुत करता है। साथ ही यह काव्य-समीक्षा की विविध कसौटियाँ भी देता है जिनमें संप्रेषण, कवि-प्रतिभा, अलंकार-योजना तथा काव्य की वह विशिष्टता है जिससे वह सबको, सर्वदा आनन्द देता है। उनके विचार से काव्य में उन्नयन की शक्ति होती है, यदि उसमें उदात्त-तत्त्व का समावेश हो।

उस प्राचीन काल में लांजाइनस का यह सिद्धान्त कवि और समीक्षक दोनों को प्रेरणा देनेवाला है। यह काव्य के महत्त्व और विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालता है। अतः अन्य प्राचीन सिद्धान्तों की अपेक्षा, यह काव्य-रचना के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है।

Scanned with CamScanner

**यथार्थवाद** ( Realism ) : यथार्थवाद, वास्तव में आदर्शवाद का पूर्णतः विरोधी नहीं है। आदर्शवाद का विरोधी वस्तुवाद या पदार्थवाद है। यथार्थवाद का आदर्शवाद से विरोध इस बात में देखा जा सकता है कि वह वस्तु और पदार्थ-सत्ता का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करता है। विचार या मनस्तत्त्व का परिणाम या परवर्ती रूप में पदार्थ-सत्ता को वह नहीं मानता। उसकी मान्यता है कि कोई वस्तु, हमारे लिए प्रत्यक्ष या इन्द्रियगम्य होती है, इसीलिए उसकी सत्ता नहीं है, वरन् हमारी दृष्टि या अनुभव-क्षेत्र में न आने पर भी वस्तु की सत्ता होती है। वस्तु या पदार्थ की स्वतंत्र सत्ता है। अतः वस्तु, पदार्थ या जीवन के कार्यकलाप का जैसा है, वैसा ही वर्णन यथार्थवाद है तथा उसका स्वरूप कैसा होना चाहिए, वैसा वर्णन आदर्शवाद है, क्योंकि हम आदर्शवाद के वर्णन में यथार्थ का आधार लेकर, शेष वर्णन अपने विचार और कल्पना के आधार पर करते हैं। किसी भी वस्तु या व्यक्ति में अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की विशेषतायें होती हैं। आदर्शवाद उनके अच्छे और उपयोगी पक्ष पर प्रकाश डालता है, इसके विपरीत यथार्थवाद उसके बुरे पक्ष को उभारता है।

Scanned with CamScanner

वास्तविकता दोनों में होती है। एक वर्णन में मानसिक पक्ष प्रधान होता और दूसरे में इन्द्रियगोचर पक्ष। साहित्य के अन्तर्गत आदर्श और यथार्थ की प्रवृत्तियाँ इन्हीं रूपों में देखी जाती हैं।

कला और साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद वह प्रवृत्ति है जिसमें वस्तुओं और व्यक्तियों के वास्तविक स्वरूप का, पारस्परिक सम्बन्धों का तथा उनके गुण-दोषों का सही वर्णन किया जाता है। इस प्रवृत्ति का दर्शन, साहित्य में मध्य युग के प्रारम्भ से ही होता है; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य से उसका पूर्णरूप दिखाई देता है। उस समय के यथार्थवाद को 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' कहा गया है—बाल्ज़ाक, चार्ल्स डिकेन्स, गोगोल, टाल्स्टाय आदि इसके प्रमुख लेखक हैं जिन्होंने मानव-जाति की बुराइयों का उद्घाटन किया तथा सामन्तवाद और मध्यवर्गीय समाज की छिपी हुई बुरी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करके समाज को उनसे बचने की प्रेरणा प्रदान की। साथ ही सामाजिक और जनतांत्रिक आदर्शों के संस्कार बनाये। यह आलोचनात्मक यथार्थवाद आज भी पूँजीवादी देशों के भी प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं में देखने को मिलता है। यथार्थवाद की कलावादी उपलब्धियों से ही सामाजिक यथार्थवाद का आधार बना।

**मध्ययुगीन यथार्थवाद** ने इस बात को प्लेटो की परम्परा कायम रखते हुए स्वीकार किया कि सार्वभौमिक अवधारणायें वास्तविक सत्ता रखती हैं और वस्तुओं की एकाकी सत्ता के पूर्व में विद्यमान रहती हैं। धारणा और पदार्थ के बीच के सम्बन्धों को भी उसमें स्वीकार किया गया। कैथोलिक विचारों का भी वही आधार बना।

**प्रकृत यथार्थवाद** वास्तव में यथार्थवाद का वह रूप है जो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भौतिक वस्तुओं के प्रति सहज बोध के रूप में दिखाई देता है। इसमें यह विश्वास निहित रहता है कि प्रत्येक भौतिक पदार्थ की मानव-चेतना से अलग स्वतन्त्र सत्ता है। यह सहज यथार्थवाद तो है, पर इसका कोई सैद्धान्तिक महत्त्व नहीं है।

**समाजवादी यथार्थवाद** : कला और साहित्य की वह प्रवृत्ति है जिसमें सच्ची और ठोस ऐतिहासिक वास्तविकता की समक्ष देखी जाती है, जो क्रान्तिकारी आन्दोलनों से उपलब्ध विकास और साम्यवादी सौन्दर्यात्मक आदर्शों के प्रकाश में प्राप्त होती है। समाजवादी यथार्थवाद के विकास, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, सामाजिक शक्ति के रूप में श्रमिक-समाज के उदय के साथ-साथ हुआ, यह मानव-मूल्यों का सही प्रतिनिधि बना। समाजवादी यथार्थवाद का चित्रण करनेवाला साहित्य, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रचा जाने लगा। गोर्की का साहित्य इसका प्रतिनिधित्व करता है। आगे चलकर यह मानव के कलात्मक विकास का एक जोरदार मंच बन गया। इसमें जीवन

की सचाई के प्रति ईमानदारी और वफ़ादारी है; परन्तु इसमें घटनाओं और इतिहास के अतीत और वर्तमान को साम्यवादी विश्व के दृष्टिकोणं से देखा जाता है और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति का जाती है। साम्यवादी सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि में, रचनाओं के नायक नये हैं जो श्रमिक वर्ग, संघर्षरत साम्यवादी समाज के निर्माण करनेवाले लोगों के बीच से लिये जाते हैं। इसमें रूपवाद के स्थान पर वास्तविकता के जोरदार चित्रण पर बल दिया जाता है। साम्यवादी शिक्षा के लिए यह सबल उपकरण बन गया है। इसके द्वारा कलाकार की रचनात्मक प्रतिभा को प्रेरणा मिलती है तथा वह अपने विषय, आदर्श और अपनी रुचि के अनुरूप अपनी शैली का चयन करने के लिए स्वतन्त्र होता है।

**प्रतिरूपवादी यथार्थवाद** : यथार्थवाद के इस रूप के प्रतिपादकों में लेनिन और ऐन्जिल्स जैसे भौतिकवादी हैं। इसके साथ डेकार्त और लॉक जैसे अनुभववादी भी हैं। इस मत के अनुसार हमारी चेतना एक फोटो-प्लेट के समान होती है जिस पर बाह्य वस्तुएँ प्रतिरूपित होती हैं और इसी रूप मे हम उन्हें जानते पहचानते हैं। इसे रिप्रेजेंटेशनिज्म ( Representationism ) कहते हैं।[1] यथार्थवाद के इस रूप मे भौतिक वस्तुओं और मानव-चेतना दोनों के अस्तित्व को स्वतन्त्र और यथार्थ माना जाता है। जबकि ऐंट्रिक यथार्थवाद चेतना के अस्तित्व को स्वतन्त्र नहीं मानता।

**अनुभवात्मक संकेतवाद** ( Imperio symbolism ) : प्रतिरूपवादी यथार्थवाद की आलोचना होने पर अनुभवात्मक संकेतवाद की स्थापना हुई जिसके अनुसार इन्द्रिय-गोचर यथार्थ वस्तु का यदि सही प्रतिरूप नहीं देते तो उसके संकेत या प्रतीक को अवश्य प्रस्तुत करते हैं। जिनके आधार पर हम यथार्थ वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि ये संकेत यथार्थ वस्तु से सम्बद्ध रहते हैं।

**नव्य यथार्थवाद** ( Neorealism ) : आधुनिक युगीय यथार्थवादी विचारधारा का यह रूप, विशेष प्रचलित हुआ। इसमें यह मान्यता रहती है कि हम जो भी सोचते-विचारते हैं वह किसी विषय-वस्तु से सम्बन्ध रखते हैं। संसार के पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं और हमारे चिन्तन या ज्ञान-प्राप्ति को क्रिया को उत्तेजित भी करते हैं। वास्तव में वे हमारे सोचने-विचारने के लिए विषय प्रस्तुत करते हैं। इसमें यह भी मान्यता है कि बाह्य संसार के पदार्थों के बिना, हमारा चिन्तन सम्भव ही नहीं हो सकता। संसार में किसी वस्तु या पदार्थ की जो स्थिति है ठीक वैसा ज्ञान, हमारी

---

१. Our sensation, our consciousness is only an image of the external world. Materialism deliberately makes the naive belief of man kind the foundation of its theory of knowledge.



ज्ञान-इन्द्रियाँ प्रदान करती हैं। पदार्थ के ज्ञान और पदार्थ की यथार्थता में एकता है। यथार्थवाद का यह रूप सर्वजन सुगम होने के कारण पापूलररियलिज्म ( Popular-realism ) भी कहलाता है।

**आलोचनात्मक यथार्थवाद** ( Critical Realism ) : यथार्थवाद की यह समकालीन और आधुनिकतम विचारधारा है और इस विचारधारा का महत्त्वपूर्ण साहित्य है। अमेरिका के सात दार्शनिकों ने मिलकर सन् १९२० में आलोचनात्मक यथार्थवाद ( Critical Realism ) नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इसमें यह मत स्पष्ट किया गया है कि किसी भौतिक विषय का प्रत्यक्षीकरण वास्तव में प्रतीति न होकर एक प्रकार का संदेश है जो उस विषय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उनका तर्क है कि हम आकाश में चमकनेवाले तारों को वास्तविकता में नहीं देख पाते, जो कुछ हम देखते हैं वह एक प्रकार का उससे प्राप्त संदेश है, जो हमें प्राप्त होता है, और यह भी सम्भव है कि जब हमें वह संदेश प्राप्त होता है तब तक उस तारे का अस्तित्व ही समाप्त हो गया हो। किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में जो प्रतीति ग्रहण की जाती है वह उस समय से भिन्न क्षण की होती है और भिन्न स्थान को भी।

आलोचनात्मक यथार्थवाद में तीन बातें देखी जाती हैं :—

१. मानसिक अवस्था ( ज्ञाता की );

२. ज्ञात प्रतीति का सार;

३. भौतिक विषय और उसकी विशेषताओं का देखा हुआ रूप।

इसे आलोचनात्मक यथार्थवाद को वैज्ञानिक यथार्थवाद भी कहा जाता है। यों तो यथार्थवाद के अनेक रूप माने जाते हैं परन्तु उसकी कुछ विशेषताएँ जो सभी को मान्य हैं वे निम्नांकित हैं :—

१. आदर्शवाद की मनस्तत्त्व की मान्यता स्वीकार करना और सांसारिक पदार्थों की सत्ता न मानना त्रुटिपूर्ण है।

२. बाह्य जगत् के पदार्थों का स्वतन्त्र और बुद्धि-निरपेक्ष अस्तित्व होता है।

३. पदार्थों के सभी गुण भौतिक एवं वस्तुगत होते हैं।

४. वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध आन्तरिक नहीं, वरन् बाह्य सत्ता से सम्बद्ध होते हैं।

५. हमारी मानसिक क्रियाएँ बाह्य संसार के पदार्थों पर निर्भर करती हैं और उन्हींसे प्रेरित होती हैं।

Scanned with CamScanner

यथार्थवाद की इस विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर–विशेष रूप से आधुनिक साहित्य पर बड़े व्यापक रूप से पड़ा। आधुनिक साहित्य की रचनाएँ यथार्थवादी दृष्टिकोण से ओतप्रोत हैं। साहित्य की आलोचना में यथार्थवाद का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध में होता है। वह साहित्यिक कृति यथार्थवादी होती है जो अपनी विषय-वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती है। इसी प्रकार यथार्थवादी लेखक उसे कहते हैं जिसका दृष्टिकोण वस्तुपरक है और जो अपनी रचनाओं में व्यक्तिगत अनुभूतियों का समावेश नहीं करता, वरन् वस्तु का विवरण वास्तविक बिम्बात्मक रूप में देता है।

परन्तु आजकल यथार्थवाद के सम्बन्ध में जो धारणा है, वह कुछ भिन्न प्रकार की है। आजकल यथार्थवादी लेखक वह माना जाता है, जो जान-बूझकर सुन्दर, सुसंगत विषयों और उदात्त चरित्रों का वर्णन अपने साहित्य में नहीं करता, वरन् उसके स्थान पर विकृत वस्तुओं और अवांछनीय कदाचारी चरित्रों का अपने साहित्य में वर्णन करता है।

कुछ विद्वान् साहित्य में यथार्थवाद को भिन्न दृष्टि से देखते हैं। उनका विचार है कि यथार्थवाद, साहित्य का वह दृष्टिकोण है जिसके अन्तर्गत जीवन और वस्तुओं का यथातथ्य चित्रण और प्रकृति का यथावत् प्रस्तुतीकरण होता है। इसमें सौन्दर्य और व्यवहार के आदर्शीकरण, आध्यात्मिक और अलौकिक बातों तथा शैलीगत चमत्कार का निषेध होता है। इस प्रवृत्ति के अंतर्गत जैसा दिखता और अनुभव में आता है, वहाँ वैसा ही वर्णन किया जाता है जिससे उसे पढ़नेवाले कह सकें कि यह वर्णन बिल्कुल सही है। एच० लेविन, लुकाच, हावर्ड फास्ट आदि का इसी प्रकार का मत है।[1] इस प्रकार यथार्थवाद साहित्य की विशेषताओं की पहचान जिन बातों से होती है, वे हैं (१) विषय से सम्बद्ध स्थानों का सूक्ष्म विवरण, चाहे वे अति सामान्य ही क्यों न हों (२) आंचलिक स्थानीय दृश्यों और वातावरण का यथातथ्य वर्णन (३) उस समय के समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों का वर्णन (४) लोक-भाषा का पात्र और परिस्थिति के अनुसार सही प्रयोग, चाहे वह अश्लील ही क्यों न हो। (५) वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों का यथावश्यक व्यवहार (६) वास्तविकता को सही सिद्ध करने के लिए पत्रों-दस्तावेजों का समावेश (७) महत्ता के स्थान पर लघुता की प्रतिष्ठा–आदि आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि यथार्थवाद आधुनिक साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति बन गया है।

१. Realism in literature is an atitude which purports to depict life and to reproduce nature in all its aspects, as faithfully as possible. It rejects the idealizing of reality in favour of beauty, together with stylization in expression and the treatment of transcendental and, supernatural subject matter.–H. Levin in 'What is Realism' in the book Comparative Literature' p. 284.



## ३. नव्यशास्त्रवाद

यूरोपीय साहित्य के अन्तर्गत शास्त्र-बद्धता और फिर उससे स्वच्छन्दता या शास्त्र-परम्परा अथवा धार्मिक-सामाजिक नैतिकता के विरोध-सम्बन्धी चढ़ाव-उतार बराबर देखने को मिलते हैं और यह प्रवृत्ति अत्याधुनिक युग तक विद्यमान है। यह बात केवल पाश्चात्य साहित्य के लिए ही सत्य नहीं है, वरन् सभी देशों के साहित्यों के इतिहास की गति इसी प्रकार ज्वार-भाटे की गति से चलती है। यूरोप में ईस्वी पूर्व पाँचवीं शताब्दी से लेकर ईसा की पाँचवीं शती तक प्रायः यूनानी विचारधारा का व्यापक प्रभाव रहा। पाँचवीं शती से लेकर पन्द्रहवीं शती ईस्वी तक का समय मध्ययुगीन साहित्य के अन्तर्गत चर्च और पादरियों का बोलबाला था तथा कला और साहित्य के क्षेत्र में धर्म और नैतिकता का साम्राज्य था। धर्मोपदेशकों के लिए यहाँ तक प्रतिबन्ध था कि वे लौकिक मनोरंजन, ऐहिकतापरक नाटक तक नहीं देख सकते थे। चर्च की मान्यता यह हो गयी थी कि नाटक और कविता बुद्धि को विकृत और ज्ञान को नष्ट कर देनेवाली होती हैं। विद्वत्ता और दर्शन के विषय ईश्वर और धर्म से ही सम्बद्ध थे। कलाकार या रचनाकार का अलग से कोई महत्त्व न था। उसका महत्त्व इसीमें था कि वह धर्मपरक या उसके प्रचार से सम्बद्ध रचना करे। यह राजतन्त्र और सामन्तवाद का युग था तथा राजा और शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। वास्तव में यह युग प्राचीन परम्पराओं के पालन या धार्मिक अनुष्ठानों का युग था। अतएव किसी भी कला-साहित्य के क्षेत्र में नये और स्वतन्त्र चिन्तन का अवकाश नहीं था।

यह वह युग था, जब यूनानी साम्राज्य नष्ट हो गया था। परिणामस्वरूप यूनानी विचारक, लेखक और कलाकार यूनान से भागकर इटली में आ गये थे तथा रोम का महत्त्व बढ़ गया था। इटली के प्रबुद्ध वर्ग ने उनका स्वागत किया। इटली में पहले से ही नये विचार और नयी व्याख्या की जागरूकता हो गयी थी। परिणामस्वरूप यूनानी विचारकों प्लेटो, अरस्तु आदि की नयी व्याख्यायें प्रस्तुत की गयीं। यह पन्द्रहवीं शताब्दी का समय था, जिसे पुनर्जागरण (Renaissance) युग कहा जाता है। इसमें ग्रीक विचारकों का अनुकरण न करके उनसे प्रेरणा लेकर साहित्य-रचना की गयी। यह समय इंग्लैण्ड के एलिजाबेथ का शासन-काल था। इटली और

Scanned with CamScanner

इंग्लैण्ड दोनों ही देशों में यूनानी और लैटिन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की स्वतन्त्र व्याख्या हुई, साथ ही उनके शुद्ध संस्करणों के स्थान पर भ्रष्ट संस्करणों और मनमानी व्याख्याओं का प्रचार हो गया था। सर फिलिप सिडनी और बेन जानसन ने प्लेटो और अरस्तू के ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया और काव्यशास्त्रीय अनुशासन को लेखन के लिए आवश्यक बताया।

सोलहवीं शताब्दी के बाद कला और साहित्य के चिन्तन का केन्द्र इटली से हटकर फ्रान्स में आ गया तथा फ्रान्स के विचारकों का प्रभाव इंग्लैण्ड के साहित्यकारों पर खूब पड़ा। बेन जानसन, शेक्सपीयर आदि ने अपने नाटकों और काव्य में नये दृष्टिकोण का परिचय दिया। फ्रांसीसी और अंग्रेजी के अनेक कवियों और लेखकों ने काव्यशास्त्रीय परम्परा के विपरीत स्वच्छन्द रचनायें और विचार प्रस्तुत किये जिससे एक अव्यवस्था-सी आ गयी। अतएव ब्यायलू ( Boileau ) बाल्ज़ाक, आदि ने साहित्य और कला के नये सिद्धान्तों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और यहाँ तक कहा कि प्राचीन नियमों का उल्लंघन करना संस्कृति को चुनौती देना है, अतः सभ्य और सुरुचि-सम्पन्न होने के लिए अरस्तू, होरेस आदि के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का पालन आवश्यक है। अतः परम्परागत शास्त्रीय नियमों को पुनःस्थापना ही 'नव्य-शास्त्रवाद' कहा जाता है। ब्यायलू की पुस्तक 'आर्ट पोइटिक' नव्यशास्त्रवाद के लिए सिद्धान्तग्रन्थ बन गयी। इसमें नियमों और सिद्धान्तों का कट्टरता से पालन कराने का आग्रह था। इसका प्रभाव अंग्रेजी साहित्य पर भी पड़ा। नाटकों में संकलनत्रय तथा काव्य में छन्द और अलंकार का सही प्रयोग आवश्यक हो गया। अठारहवीं शताब्दी में नव्यशास्त्रीय आलोचना का व्यापक प्रभाव पड़ा। ड्राइडन, पोप, एडिसन, डॉ० जानसन आदि इसके प्रतिनिधि विचारक माने जाते हैं।

१. नव्यशास्त्रवाद की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—नव्यशास्त्रवाद ने वास्तव में साहित्यिक और कलात्मक रचनाओं के सिद्धान्त, नियम और संरचना को विधियों को खोजने का प्रयत्न किया।[1] इस आन्दोलन के द्वारा प्राचीन ग्रीक और लैटिन के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का ठीक अनुवाद और टीकायें भी प्रस्तुत की गयीं।

२. नव्यशास्त्र के अन्तर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त, प्रकृति का अनुकरण है। यह अनुकरण अरस्तू के अनुकृति-सिद्धान्त पर आधारित है, पर इसका व्यापक अर्थ

---

१. It attempted to discover the principles or laws or rules of literature, of literary creation, of structure of literary work of art and the readers response.—A History of Modern Criticism—Neo classism, Vol I, p. 12, by Rene Wellek.



लिया गया है। प्रकृति के अनुकरण का अर्थ है—यथार्थ चित्रण। प्रकृति के अन्तर्गत अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के साथ-साथ मानव-प्रकृति को भी लिया गया है। इसमें प्रकृति के सौन्दर्य, उसमें निहित जगत् के नियम और भाव भी सम्मिलित हैं।

३. इसके अन्तर्गत मानवीय प्रकृति के सार्वभौम उदात्त रूपों का समावेश तथा उसके आंचलिक, संकुचित, कुत्सित रूपों का बहिष्कार भी होता है।

४. इसमें प्रकृति और मानव का सुन्दर और आदर्श रूप ही वांछनीय है।

५. कलाकृति के गठन एवं संरचना के सम्बन्ध में नव्यशास्त्रवाद अरस्तू की मान्यताओं से भिन्न विचार रखता है। जहाँ अरस्तू विषय-वस्तु एवं रूप-विधान में संघटनात्मक एकता को स्वीकार करते हैं, वहाँ नव्यशास्त्रवाद दोनों पक्षों की अलग-अलग सत्ता स्वीकार करता है। परिणामस्वरूप काव्य की विषय-वस्तु को नैतिक मूल्यों की कसौटी पर कसने की प्रवृत्ति का विकास हुआ। आलोचना के लिए कथावस्तु, विचार, चरित्र, छन्द, भाषा आदि पर अलग-अलग विचार होने लगा और साहित्यालोचन की लीकें और ढर्रे बनने लगे।

६. नव्यशास्त्रवाद ने काव्य और कला के उद्देश्य पर भी नियम बनाये। उसके अनुसार काव्य का प्रयोजन नैतिक शिक्षा या आनन्द प्रदान करना माना गया; पर बल नैतिक शिक्षा और उपदेश पर दिया गया।

७. अरस्तू के विरेचन-सिद्धान्त पर भी अलग-अलग व्याख्यायें की गयीं और यह भी कहा गया कि विरेचन-प्रक्रिया के लिए चुने गये भय और करुणा के भावों के बार-बार प्रदर्शन से दर्शकों की संवेदना जड़ हो जाती है और उसका प्रभाव नहीं रहता, ठीक उसी प्रकार जैसे एक सर्जन, बार-बार चीर-फाड़ करते हुए स्वयं पीड़ा की अनुभूति से शून्य हो जाता है।

८. काव्य का प्रयोजन नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना है—ऐसा मानने से, यह भी नव्यशास्त्रवाद में आवश्यक माना गया कि कवि और कलाकार में प्रतिभा और प्रेरणा के साथ-साथ कला-विषयक तथा संसार का ज्ञान भी होना चाहिए।

नव्यशास्त्रवाद की उपर्युक्त बहुत सी मान्यतायें परवर्ती साहित्य में भी स्वीकार की गयीं, परन्तु नियम-पालन के अतिशय आग्रह ने स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को पुनः जाग्रत कर दिया। यह प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद का पुनः जागरण या रोमांटिक रिवाइवल ( Romantic Revival ) के नाम से जानी जाती है।

## ४. स्वच्छन्दतावाद

हिन्दी का स्वच्छन्दतावाद शब्द, अंग्रेजी के रोमान्टिसिज्म ( Romanticism ) का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी रोमान्टिसिज्म, रोमांस से बना है जिसका अर्थ है—प्रेम

के स्वच्छन्द क्रिया-कलाप। प्रेम और स्वच्छन्दता दोनों ही मानव-जीवन के सहज तत्त्व हैं; अतः जीवन में स्वच्छन्द प्रेमचर्या भी स्वाभाविक है। इसीके परिणामस्वरूप स्वच्छन्द प्रेम-चर्या, जिसमें सामाजिक मर्यादाओं और दायित्वों का उल्लंघन प्रकट किया गया हो कला और साहित्य के क्षेत्र में भी आ गयी। यह प्रवृत्ति हमें प्राचीन आभिजात्य ( Classical ) साहित्य के समय भी देखने को मिलती है और बाद के युगों में भी। बाद के युगों में यह स्वच्छन्द प्रेम-चर्या ( Romance ) प्रेमाख्यान काव्यों के रूप में प्रकट हुई। इन प्रेमाख्यानों में एक नये प्रेम-चर्या के संसार की कल्पना की हुई दिखाई देती है, जिसमें प्रेम के लिए नायक और नायिका अद्भुत त्याग, तपस्या और बलिदान करते हैं। प्रेमतत्त्व ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। यह प्रेम, प्रायः सौन्दर्य के प्रति है और विशेष रूप से नारी-सौन्दर्य के प्रति। अतः इन प्रेमाख्यानों में नारी के अलौकिक, दिव्य और काल्पनिक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। यह प्रवृत्ति केवल साहित्य में ही नहीं, वरन् चित्रकला और मूर्तिकला की कृतियों में भी देखी जाती है।

परन्तु यह स्वच्छन्द प्रेम-चर्या, सामाजिक मर्यादा, धर्म और नैतिकता के विरुद्ध जाती है। अतः मध्ययुग के धर्मप्रधान काव्य में ऐसी प्रवृत्तियों का बहिष्कार किया गया। इस प्रवृत्ति के विपरीत धार्मिक नैतिकतावादी अथवा काव्यशास्त्रीय नियमोंवाले नव्यशास्त्रवाद का उदय और प्रचार हुआ। आभिजात्य और शास्त्रवादी काव्य में मर्यादा, स्पष्टता और समाधान के तत्त्व देखने को मिलते हैं। अंग्रेजी साहित्य में ड्राइडन और डॉ० जानसन के समय तक इसका प्रभाव देखने को मिलता है।[1] परन्तु इस शास्त्रीय और परम्परावाद के विपरीत अठारहवीं शताब्दी में स्वच्छन्दतावाद का पुनः जागरण हुआ।

यों तो स्वच्छन्दतावाद का पुनरुत्थान प्रतिक्रियास्वरूप अपने-आप ही हो रहा था; परन्तु उसके गतिमय विकास की दिशा में दो बातें बड़ी प्रेरक रहीं—एक जर्मन स्वच्छन्दतावादी साहित्य और दर्शन तथा दूसरा फ्रान्स की राज्यक्रान्ति। इन दोनों के प्रभाव से अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य ने एक व्यापक एवं विशिष्ट प्रेरणादायी रूप ग्रहण किया। इस पारस्परिक प्रभाव-ग्रहण की दिशा में शेक्सपीयर के नाटकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। ये नाटक जिनमें स्वच्छन्दतावाद की मनोरम प्रवृत्ति विद्यमान है, जर्मन भाषा में अनूदित होकर जब पहुँचे, तब उन्होंने सुप्रसिद्ध जर्मन कवि गोयथे

---

१. Order, clarity and tranquility are obviously classical qualities and these are the qualities that have engaged our attention in dealing with the literature of Dryden and Johnson age.—Arthur Compton Rickett : History of English Literature, p. 292.



( Goethe ) को प्रभावित किया। जर्मन साहित्यकार लेसिंग ने भी शेक्सपीयर के नाटकों की तुलनात्मक समीक्षा कर उनका महत्त्व स्पष्ट किया। आगे चलकर श्लेगल और कान्ट की दार्शनिक विचारधारा ने जर्मन स्वच्छन्दतावाद को एक विशिष्ट आयाम प्रदान किया। रायल सोसायटी आफ् एडिनबरा की संगोष्ठियों में अंग्रेजी और जर्मन स्वच्छन्दतावाद पर विचार हुआ और इस प्रकार पाश्चात्य साहित्य पर व्यापक रूप से उसका प्रभाव फैलने लगा। यह कहा जा सकता है कि जर्मन स्वच्छन्दतावाद, आलोचनात्मक और दार्शनिक तत्त्वों से युक्त है और उनकी रचनाओं में एक संरचनात्मक एवं वस्तुपरक संगति है। वह कलात्मक मन के स्वच्छन्द उद्गारों के रूप में नहीं है, जैसा कि हमें उसका रूप शेली, कालरिज, स्काट आदि की रचनाओं में मिलता है। वरन् जर्मन स्वच्छन्दतावाद एक मत और विश्वास के रूप में है। स्वच्छन्दतावादी काव्य और त्रासदी का, वहाँ के जीवन पर गम्भीर प्रभाव भी पड़ा। उसके विपरीत इंग्लिश स्वच्छन्दतावाद सौन्दर्य-संवेदना को विकसित करने और वैयक्तिक अनुभूतियों के विकास में अधिक सहायक सिद्ध हुआ। वह प्रायः भावुकतापूर्ण, नव्य कल्पनाशीलता एवं रहस्यदर्शन का पर्याय बन गया।

स्वच्छन्दतावाद के विकास में फ्रेन्च रेवोल्यूशन ( फ्रांस की राज्य-क्रांति ) का महत्त्वपूर्ण हाथ है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य में जो भी क्रांति-दृष्टि और मानवतावादी भावनायें हैं, वे उसीकी देन हैं। यों तो फ्रांस का स्वच्छन्दतावाद राज्यक्रांति के बाद विकसित हुआ। उस पर अंग्रेजी और जर्मन कवियों जैसे स्काट, बाइरन और गोइथे का प्रभाव पड़ा; परन्तु फ्रेन्च स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव बाहर अधिक नहीं पड़ा। फिर भी फ्रांस की राज्यक्रांति से जो सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल हुई उसका प्रभाव अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा पर देखा जा सकता है। वास्तव में फ्रांस के क्रांतिकारी दार्शनिक और लेखक "रूसो" के विचारों का प्रभाव व्यापक रीति से पड़ा। फ्रान्स की क्रान्ति ने स्वच्छन्दतावाद को तीन रूपों में प्रभावित किया—( १ ) सैद्धान्तिक और वैचारिक रूप से, ( २ ) राजनीतिक रूप से तथा ( ३ ) सैनिक प्रभाव के रूप में।

सैद्धान्तिक और वैचारिक पक्ष रूसो के विचारों से निर्मित हुआ। उसका भावनात्मक प्रभाव राबर्ट ब्लेक, वर्ड्सवर्थ और कालरिज की रचनाओं में देखा जा सकता है; परन्तु रूसो का बौद्धिक प्रभाव शेली पर खूब पड़ा, जो गॉडविन (Godwin) के माध्यम से आया। परिणामस्वरूप बाह्य प्रकृति के प्रति प्रेम और जीवन के सरल सीधे ढंग वर्ड्सवर्थ आदि की रचनाओं में तथा प्रेम के उत्कट मूल्यों का जोरदार उद्घाटन शेली के काव्य में मिलता है। इस प्रसंग के रूसो के विचारों का सार जान लेना उपयोगी होगा, जो संक्षेप में इस प्रकार है—प्राकृतिक होने के कारण मनुष्य की

Scanned with CamScanner

मूलभूत वृत्तियाँ और प्रेरणायें भली होती हैं। मनुष्य में बुराई का प्रवेश इसलिए हुआ क्योंकि वह विकार-रहित प्रकृति को छोड़कर बनावटी और विलासी बन गया। इस नग्न स्थिति से उबरने के लिए हमें फिर वनों और पर्वतों की ओर जाना चाहिए। उसका यह भी विचार था कि राजनीतिक संस्थायें इसलिए बनती हैं कि धनी, गरीब का शोषण करे तथा अत्याचारी, दुर्बल को सताये। शक्ति सदैव दुर्नीतिमय होती है। प्रेम को छोड़कर कोई तत्त्व अनिवार्य नहीं। नई सामाजिक व्यवस्था, केवल तर्क और ज्ञान के प्रकाश द्वारा ही निर्मित की जा सकती है।

रूसो के इस प्रकार के विचारों का प्रभाव किसी पर भावुकता के रूप में, किसी पर आत्मिक बल और प्रेरणा के रूप में तथा किसी पर पूर्णतया क्रान्ति की भावना के रूप में पड़ा। परिणामस्वरूप यह स्वच्छन्दतावादी पुनरुत्थान केवल हल्का, हवाई और मनोरंजनपूर्ण काव्य देने के स्थान पर ऐसा साहित्य दे गया जिसमें आत्म-मन्थन, प्रेमकल्प, सौन्दर्य की उत्कट अनुभूति, मानवता की अगाध संवेदना, उत्सुकता, उल्लास और लोकमानस का मर्म स्पर्श करने की विशेषतायें समाविष्ट हो गयी। इसलिए पाश्चात्य साहित्य के इतिहास में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का बड़ा महत्त्व है; क्योंकि इसके प्रभावस्वरूप अनेक मतवादों और कला तथा काव्य की प्रयोग-धाराओं का प्रस्फुटन हुआ। अतः हमारे लिए यह वांछनीय हो जाता है कि स्वच्छन्दतावाद की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दिया जाय।

स्वच्छन्दतावाद वास्तव में एक नव्य कल्पनाशील दृष्टिकोण से जीवन और प्रकृति को देखने की प्रवृत्ति है जिसने प्रायः सभी कला-रूपों को प्रभावित किया है तथा इतिहास और दर्शन पर भी प्रभाव डाला है। साहित्य और कला के क्षेत्र में यह पैनी सूक्ष्म संवेदनाओं एवं उत्कृष्ट काल्पनिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की कला है। स्वच्छन्दतावादी भावना के मुख्य तत्त्व हैं—सौन्दर्य-प्रेम, सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा, प्रकृति को चेतन मानकर उसके साथ सम्बन्ध जोड़ना, सरल और प्राकृतिक जीवन का मोह तथा कृत्रिमता और आडम्बर का विरोध, परम्परा से मुक्ति, काल्पनिकता, भावुकता, वैयक्तिकता तथा मानवतावादी दृष्टिकोण। इन पर हम संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

१. **सौन्दर्य-प्रेम** : सौन्दर्य के प्रति प्रेम प्रत्येक कला का मूलभूत तत्त्व है। वास्तव में कला और काव्य का आरम्भ ही सौन्दर्य के प्रति आकर्षण के साथ हुआ था। अतः सौन्दर्य, कला का मुख्य गुण है। हाँ, आधुनिक युग में सौन्दर्य के स्थान पर कुरूप का भी चित्रण होता है, पर उसमें भी हास्य, आश्चर्य, घृणा आदि भावों का सौन्दर्य रहता है। परन्तु स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत सौन्दर्य अपने मूल अर्थ में अवयव-संगठन, अवयव-अनुपात, रंग और कान्ति, आकार आदि का आकर्षण और उसकी मनोरमता



के रूप में आता है। अतः स्वच्छन्दतावादी दृष्टि में सौन्दर्य अपने मूलभूत और प्राकृतिक अर्थ में ही गृहीत हुआ है।

२. **सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा** : सौन्दर्य-प्रेम स्वच्छन्दतावाद का भाव-पक्ष है और जैसा कहा जा चुका है यह सौन्दर्य-प्रेम कला और काव्य का प्रकृत तत्त्व है। परन्तु इस सौन्दर्य-प्रेम के साथ-साथ, जब एक गहरी जिज्ञासा की भावना सम्मिलित हो जाती है, तब वह स्वच्छन्द प्रेम-चर्या, स्वच्छन्दतावाद का रूप धारण करती है। स्वच्छन्दतावाद, प्रत्यक्ष सौन्दर्य को, जो दिखायी पड़ता है, व्यापक या पूर्ण सौन्दर्य को झलक-मात्र मानता है और अपनी कल्पना से अप्रत्यक्ष सौन्दर्य को भी देखकर उसका वर्णन करना चाहता है। अतः सौन्दर्य में रम जाना और उसके भीतर और गहरे छिपे सौन्दर्य को देखने और जानने की इच्छा, सौन्दर्य के प्रति रोमाण्टिक या स्वच्छन्दतावादी दृष्टि की विशिष्टता है। यह जिज्ञासा उसका बौद्धिक पक्ष है।

३. **काल्पनिकता** : सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा के साथ-साथ सौन्दर्य के अप्रत्यक्ष रूप का, जो और जिस प्रकार उद्घाटन स्वच्छन्दतावाद के द्वारा होता है, वह कल्पना का कार्य है। सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा के परिणामस्वरूप सौन्दर्य के जो अप्रत्यक्ष रूप और बिम्ब उद्घाटित होते हैं, वे काल्पनिकता के प्रतिफलन होते हैं। वास्तविकता तो यह है कि स्वच्छन्दतावाद में अभिव्यंजित जो अनुभूति होती है, वह काल्पनिकता के माध्यम से ही होती है। यही; उस अनुभूति की अभिव्यंजना में एक विशिष्ट लालित्य और कला भर देती है। परन्तु यह काल्पनिकता भी स्वच्छन्दतावाद में सामान्य प्रकार की न होकर चरम उत्कर्ष को प्राप्त होती है। इसके कारण हम ऐसी रचना या कला में उस अनुभूति, गुण, रंग या सौन्दर्य का उत्कृष्ट संभाव्य या चरम रूप देख सकते हैं। स्वच्छन्दतावाद की यह महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है।

४. **भावुकता** : स्वच्छन्दतावाद, वस्तुपरक यथार्थवाद न होकर एक प्रकार का आदर्शवाद है। वस्तु या व्यक्ति को देखने की उसकी दृष्टि भावुकता की होती है, सामान्य नहीं। स्वच्छन्दतावाद प्रकृति, दृश्य या वस्तु को किसी भाव से युक्त होकर देखता है; पर उसकी भावुकता अनर्गल या असंगत नहीं होती। उसे देखकर कवि के भीतर एक विशेष प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है और उसीसे आविष्ट होकर वह उसका वर्णन करता है। यह वर्णन ऐसा होता है कि उसे पढ़ने या सुननेवाला भी उसी भाव में बह जाता है। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि उसका वर्णन वास्तविकता से दूर है; परन्तु ऐसा तभी होता है, जब कवि भाव-विभोर नहीं होता; अन्यथा उसके वर्णन की कला के जादू से प्रभावित होकर हम भी उसमें भर जाते हैं। इस भावुकता के परिणामस्वरूप स्वच्छन्दतावादी कवि का वर्णन वैयक्तिकता से पूर्ण होता है। अतः वैयक्तिकता भी स्वच्छन्दतावाद का गुण है।

Scanned with CamScanner

**५. वैयक्तिकता :** स्वच्छन्दतावाद वैयक्तिक निजी अनुभूति को महत्त्व देता है। उसकी दृष्टि सामाजिक न होकर व्यक्तिवादी है। इस कारण जहाँ वह एक ओर सामाजिक मर्यादा और परम्परागत बन्धनों से मुक्ति के गीत गाता है तथा उनके बन्धनों और रूढ़ियों को तोड़कर क्रान्ति भी लाना चाहता है; वहीं अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम और अर्थ-काम की असफलता के कारण निराशा की तथा विषाद और वेदना की भी अभिव्यक्ति करता है। जर्मन कवि गोइथे (गेटे) यद्यपि रूढ़ि-विरोधी और बौद्धिक स्वच्छन्दतावाद का पोषक था; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी की वेदना और निराशा-भरे स्वच्छन्दतावादी काव्य को उसने रुग्णता का काव्य तक कह डाला है। वास्तव में स्वच्छन्दतावाद में वैयक्तिकता के स्वर दो रूपों में मुखरित हुए हैं। एक ओर तो वह कवि की अनुभूति-तरंगों की बारीकियों को रूपायित करते हुए सौन्दर्य-प्रेम और प्रकृति के उत्कृष्ट गीतिकाव्य की सर्जना करता है और दूसरी ओर सामाजिक मर्यादाओं के कारण प्रेम-व्यापार में निराशा तथा अन्य समस्याओं से पीड़ित होकर विषाद, निराशा और वेदना के गीत गाता है। दार्शनिक दृष्टि, जीवन की क्षणभंगुरता, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य आदि को लेकर भी निराशावादी काव्य लिखा गया। यही भावना और अधिक विस्तृत होकर अस्तित्ववादी विचारधारा को प्रेरित करनेवाली बनी। स्वच्छन्दतावाद में वैयक्तिकता का स्वर ही ध्वमित हुआ है।

**६. आडम्बर और कृत्रिमता का विरोध :** स्वच्छन्दतावाद में पुरातन-पन्थी नियमों और परम्परागत आडम्बर से मुक्त होकर जीवन की सहजता और स्वाभाविकता का चित्रण हुआ। बहुत-सी सहज अनुभूतियों का खुला चित्रण स्वच्छन्दतावाद में मिलता है, जिनकी अभिव्यक्ति पहले मर्यादा के विपरीत और नियम-विरुद्ध समझी जाती थी। इसकी मान्यता है भाषा और अभिव्यंजना-शैली में कृत्रिमता और अस्वाभाविकता से मुक्त होकर ही लिखना चाहिए। अलंकृति और छन्द-विधान में भी रूढ़ि और परम्परा से हटकर, सहज स्वाभाविक अलंकारों और लयों को अपनाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है। भाषा और अभिव्यक्ति के बनावटीपन से दूर रहकर सहजभाव-तरंगों को स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति देना स्वच्छन्दतावादी कवि का प्रमुख उद्देश्य बन गया था। यही कारण था कि उसमें एक सहज आकर्षण और अकृत्रिम मनोरमता दिखाई देती है। सरल और प्राकृतिक जीवन के प्रति स्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रबल आकर्षण था।

**७. प्रकृति के प्रति उत्कट प्रेम एवं उसमें मानव-भावनाओं का आरोप :** रूसो के विचारों में प्रकृति की गोद में पुनः जाने का आह्वान था। प्रकृति की ओर जाने से ही जीवन में आयी कृत्रिमता से मुक्ति मिल सकती है, अतः प्रकृति के प्रति प्रबल आकर्षण स्वच्छन्दतावाद की एक प्रमुख विशिष्टता बनकर उभरी। इतना ही नहीं, प्रकृति के

Scanned with CamScanner

कार्यकलाप के भीतर किसी रहस्य का दर्शन भी स्वच्छन्दतावाद में देखा जा सकता है। प्रकृति में भी संवेदना की अनुभूति स्वच्छन्दतावादी काव्य में बराबर देखी जाती है। उल्लास और विषाद की स्पष्ट छाया देखना और उसमे स्वयं प्रभावित होना स्वच्छन्दतावाद की व्यापक संवेदनशीलता का परिचायक है। सूर्य का उगना-डूबना, बादलों का घिरना, पर्वतों पर झोंकों से मस्त होकर द्रुमों का थिरकना, वर्षा, शरद्, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में उभरती हुई प्रकृति की नवीन छटायें, स्वच्छन्दतावादी कवि को उल्लास से भर देती थीं। प्रकृति की शोभा और उसकी बदलती छबियाँ, स्वच्छन्दतावाद की सतरंगी आभा है जिसमें कवि विभोर हो उठता है। घाटियों और चरागाहों में खिलते-डोलते फूल स्वच्छन्दतावादी कवि को मुग्ध कर देते हैं। इन प्राकृतिक दृश्यों से उसकी संवेदना व्यापक और कोमल बन जाती है। प्रकृति में मानव-भावनाओं के आरोप ने स्वच्छन्दतावाद में मानवतावादी भावनाओं को जाग्रत कर गहराई से उभारा। इस प्रकार मानवतावादी दृष्टि भी इसकी एक विशेषता बन गयी—सौन्दर्य और भावनाओं की खोज उसके लिए उल्लासपूर्ण ध्येय बन गया।

८. **मानवतावादी दृष्टि** : रूसो के विचारों ने मानव के गौरव और गरिमा की जोरदार शब्दों में प्रतिष्ठा की। मनुष्य को मनुष्य के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। उसने प्रेम की अन्तर्व्यापी शक्ति को भी उभारा। नागरीय भीड़भाड़ और दिखावे के व्यवहार के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया भी रूसो ने व्यक्त की। इसका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा पर गहरा पड़ा। व्यापक रूप से पीड़ित और दुःखी के प्रति संवेदना का भाव इस प्रकार के काव्य में देखने को मिलता है। संवेदना के विस्तार से व्यापक प्रमभाव जाग्रत हुआ जिसके परिणामस्वरूप मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास हुआ।

इस प्रकार सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा-भरा प्रेम, प्रकृति के प्रति आकर्षण और रहस्य की भावना, संवेदना का विस्तार, कल्पना से सौन्दर्य और प्रकृति के भीतर रहस्य-दर्शन और उसका उद्घाटन तथा रूढ़ियों, मर्यादाओं एवं बँधी-बँधायी अभिव्यंजना शैली से स्वच्छन्दता, स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख तत्त्व स्पष्ट होते हैं।

Scanned with CamScanner